मौद्रिक नीति की दुविधाएँ : कुछ आरबीआई परिप्रेक्ष्य*

दुव्वुरी सुब्बाराव

मैं स्टर्न स्कूल में एक ऐसे विद्वत् समाज के बीच, जो केंद्रीय बैंक से संबंधित मुद्दों में दिलचस्पी रखता है, बोलने के इस अवसर को अपने लिए बहुत मूल्यवान मानता हूँ । पिछले दशक में केंद्रीय बैंकों की प्रोफाइल बढ़ी है । पहला, हमने 'व्यापक नरमी' - की स्थिति देखी, जो वैश्विक रूप से असाधारण सौम्य समष्टिआर्थिक वातावरण की स्थिति रहा है, जिसकी विशेषता रही है उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में स्थिर गति से और उभरती अर्थव्यवस्थाओं में तीव्र वृद्धि का होना और सर्वत्र कम एवं स्थिर मुद्रास्फीति का रहना । केंद्रीय बैंकों ने इसका श्रेय लिया, उनका विश्वास था कि उन्होंने 'होली ग्रेल' की खोज कर ली है और उन्होंने अपनी विजय का शंखनाद कर दिया।

2. इस जीत की भावना को तब ठेस लगी जब संकट उपस्थित होने पर केंद्रीय बैंकों पर उन नीतियों और कदमों के लिए दोषारोपण किया गया जिसने दुनिया को इस संकट में धकेल दिया था । ऐसा होने पर भी, केंद्रीय बैंकों ने इस संकट से शुरू से ही संघर्ष किया और तेजी से तथा निर्णायक रूप से कार्रवाई करते हुए अपनी खोयी हुई प्रतिष्ठा में से कुछ अंश को पुनः प्राप्त किया, जिसके लिए उन्होंने जरूरत होने पर मिलकर कार्य करते हुए वैश्विक अर्थव्यवस्था को, जो ढहने के कगार पर थी, स्थिर करने का प्रयास किया। पिछले कुछ महीनों से 'दोहरी मंदी' का भय उभर कर सामने आया है और उन्नत देशों की सरकारें अल्पावधि राजकोषीय प्रोत्साहन तथा दीर्घावधि राजकोषीय समेकन के बीच संतुलन के लिए एक नीतिगत गतिरोध का सामना कर रही हैं। इसने जबरदस्ती केंद्रीय बैंकों को एक बार फिर से आगे धकेल दिया है, क्योंकि मौद्रिक प्रोत्साहन को मंदी के विरुद्ध बोझ उठाने का पहला और कुछ मामलों में एकमात्र रक्षोपाय बनना पड़ा है ।

3. यह संकट अनेक प्रकार से बौद्धिक चुनौती बना रहा है। इसने उन तमाम साधनों की परीक्षा ले ली है जो केंद्रीय बैंकों के पास उपलब्ध होते हैं और इसने उनके नीतिगत बल की सीमा का भी परीक्षण कर लिया है। इसने उन सवालों को भी फिर से उठाया है जिनके बारे में हमने सोचा था कि हमने उनका समाधान कर लिया है और उन बहसों को फिर से उठा दिया है जिनके बारे में हमारा सोचना था कि हमने उनका निपटारा कर दिया है। मेरा अपना अनुभव यह रहा है कि वास्तविक जगत की समस्याएँ इतनी जटिल होती हैं कि उनका निपटारा पाठ्य-पुस्तकों के हल के समान नहीं किया जा सकता है। आपने मुझे जो अवसर प्रदान किया है, मैं उसका उपयोग वास्तविक जगत में नीति-निर्माण की जटिलताओं और दुविधाओं के बारे में आपको बताने के लिए करना चाहता हूँ, और ऐसा मैं भारतीय रिज़र्व बैंक के परिप्रेक्ष्य में करूँगा।

वृद्धि - मुद्रास्फीति के जटिल सहसंबंध का मौद्रिक नीति के सहारे उचित समाधान क्या है?

4. भारत अन्य उभरती अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में संकट से जल्दी उबर गया, लेकिन मुद्रास्फीति ने भी अन्यत्र की तुलना में हमें जल्दी ही अपने पाश मे जकड़ लिया। मुद्रास्फीति, जिसे थोक मूल्य सूचकांक द्वारा मापा जाता है, वर्ष 2009 के मध्य में कुछ समय के लिए ऋणात्मक रहने के बाद वर्ष 2009 के अंत तक बढ़ने लगी और जनवरी 2010 से यह लगभग 9-10 प्रतिशत पर बनी रही, जो माँग और आपूर्ति, दोनों स्तरों पर दबाव को प्रतिबिंबित करती है। ऊँची घरेलू खाद्यान्न कीमतों से और तेल तथा अन्य पण्यों की बढ़ती वैश्विक कीमतों के कारण आपूर्ति पर दबाव बना । माँग पर दबाव का स्रोत एक ऐसी अर्थव्यवस्था थी जिसमें प्रति व्यक्ति आय कम थी और जो संकट से तेजी से उबर गई। आपूर्ति के दबाव और माँग के दबाव में टकराव हुआ जिससे मुद्रास्फीति की एक व्यापक प्रक्रिया शुरू हुई।

5. मुद्रास्फीतिकारक दबावों के समाधान के लिए रिज़र्व बैंक ने अक्तूबर 2009 से ही अपनी समंजनकारी मौद्रिक नीति को उलटना शुरू कर दिया था। हमारी आलोचना हमारे मुद्रास्फीतिरोधी रुझानों के लिए मुख्यतः दो दिशाओं से की जाती रही है। एक ओर हमारी आलोचना यह कहते हुए की जाती है कि हम मुद्रास्फीति के संबंध में अत्यंत आक्रामक रुख रखते हैं। इस संबंध में यह तर्क दिया जाता है कि हमारी मुद्रास्फीति अधिकतर आपूर्तिजन्य आघातों से प्रेरित है, विशेष रूप से वर्ष 2010 के मध्य से यह तेल और अन्य पण्यों की ऊँची कीमतों से प्रेरित है और कि ऐसी मुद्रास्फीति का समाधान मौद्रिक नीति के सहारे नहीं किया जाना चाहिए। अंततः हमारे कदमों से वृद्धि की गति में कमी आ सकती है। दूसरी ओर यह आलोचना की जाती है कि रिज़र्व बैंक मुद्रास्फीति के संबंध में नरम रहा है, हमने प्रत्येक बार नीतिगत ब्याज दरें 25 आधार अंक बढ़ाने का जो छोटा कदम उठाया उससे मुद्रास्फीति रोकी नहीं जा सकी और कि मुद्रास्फीति का बना रहना हमारी विलंबित अनुक्रिया का परिणाम था। ये दोनों आलोचनाएँ एक ही समय में सही नहीं हो सकती हैं। मैं उन आलोचकों को इस संबंध में अपनी प्रतिक्रिया

* 26 सितंबर 2011 को स्टर्न स्कूल ऑफ बिजनेस, न्यूयार्क विश्वविद्यालय में डॉ. डी.सुब्बाराव, गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक की टिप्पणी ।

देना चाहता हूँ और इस प्रक्रिया में अपने मुद्रास्फीति निवारक दृष्टिकोण के औचित्य को स्पष्ट करना चाहता हूँ।

मौद्रिक नीति अत्यधिक आक्रामक है

6. शांतिवादियों के प्रति मेरी प्रतिक्रिया इस प्रकार है। यह सर्वमान्य है कि मौद्रिक नीति सकल माँग पक्ष से पैदा होने वाले मुद्रास्फीतिकारक दबावों को रोकने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होती है। इस मामले में नीतिगत उपाय स्पष्ट हैं। यदि मुद्रास्फीति ऊँची हो तो मौद्रिक नीति को कठोर बनाया जाये; और यदि मुद्रास्फीति कम हो तो मौद्रिक नीति को शिथिल किया जाये। आपूर्तिजन्य आघातों के होने पर भी मौद्रिक नीति संबंधी विकल्प कम सरल होते हैं। अतः आपूर्तिजन्य आघातों का समाधान करने के लिए मौद्रिक नीति कारगर है या नहीं, यह विषय विद्वत्-चर्चा और नीतिगत-विवाद, दोनों के लिए महत्वपूर्ण है ।

7. परंपरागत समझदारी यह है कि यदि मुद्रास्फीति संबंधी प्रत्याशाओं को काबू में रखा जाये तो आपूर्ति-आघातों के समाधान के लिए मौद्रिक नीति विषयक उपाय करने की आवश्यकता नहीं होती। यह आधार-वाक्य दो मान्यताओं पर आधारित है : पहला यह कि आपूर्ति-आघात नितांत अस्थायी प्रकृति के होते हैं और दूसरा यह कि आपूर्ति-आघात ही केवल मुद्रास्फीति को प्रेरित करते हैं। ये मान्यताएँ हर समय सही नहीं होती हैं। वास्तविक जगत में, अक्सर आपूर्ति-आघात कीमतों में स्थायी उर्ध्वमुखी रुझान का कारण बनते हैं। यह भी कि, कभी-कभी माँग-जन्य दबाव आपूर्ति-आघातों के साथ मिल कर मुद्रास्फीतिकारक दबावों को बढ़ा देते हैं ।

8. पहली मान्यता का एक उदाहरण - माध्य आपूर्ति-आघातों को उलट देता है - यह बात सही नहीं है, यह इस बात से साबित होता है कि वैश्विक तेल की कीमतों में दीर्घावधि आधार पर उर्ध्वमुखी प्रवृत्ति दिखाई पडी। अंतरराष्ट्रीय कच्चे तेल के मूल्य में 2000 के दशक के दौरान लगभग 17 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई जबकि 1990 के दशक के दौरान इसमें केवल 2 प्रतिशत की कम वृद्धि हुई थी और 1980 के दशक के दौरान इसमें 3 प्रतिशत की कमी आई थी । स्पष्टत: यह तेल के मामले में माँग-पूर्ति में संरचनात्मक परिवर्तन का नतीजा है। मौद्रिक नीति को इन अंतर्निहित प्रवृत्तियों को पहचानना पड़ेगा और इनका समाधान ढूँढना होगा। यदि मौद्रिक नीति की दृष्टि से ये प्रवृत्तियाँ अल्पकालिक आपूर्ति संबंधी आघात होंगी तो इससे मुद्रास्फीति की प्रत्याशाओं के अस्थिर बने रहने का जोखिम पैदा होगा।

9. और अब दूसरी मान्यता - मुद्रास्फीति को बढ़ाने में आपूर्ति संबंधी आघात अकेले कार्य नहीं करते । पिछले डेढ़ वर्षों से भारत में मुद्रास्फीति के बदलते प्रेरक तत्व इसका अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। वैश्विक पण्य-कीमतों में वृद्धि के साथ-साथ देश में भी माँग की स्थिति में द्रुत गति से बढ़ोतरी हुई। पिछले वर्ष (2010-11) में जीडीपी 8.5 प्रतिशत की दर से बढ़ी, जो अभिप्रेत वृद्धि दर से तेज थी, जिसका अनुमान अब 8 प्रतिशत के आसपास लगाया गया है। द्रुत वृद्धि और उच्च क्षमता उपयोग के वातावरण में कारपोरेटों ने फिर से कीमत-निर्धारण शक्ति प्राप्त कर ली और वे निविष्टि की कीमतों में वृद्धि का अंतरण उच्चतर उत्पादन कीमतों में करने में समर्थ हुए और इस प्रकार सामान्यीकृत मुद्रास्फीति दबावों में तेजी आई।

10. इसी प्रकार का सहसंबंध खाद्यान्न के मोर्चे पर भी दिखाई पड़ा। बढ़ती आमदनी, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, का परिणाम यह हुआ कि लोगों की आदत में परिवर्तन हुआ और वे अपने भोजन में अनाज की अपेक्षा प्रोटीन आधारित पदार्थों का प्रयोग करने लगे। यह एक संरचनात्मक परिवर्तन है और यदि मौद्रिक नीति के अंतर्गत इसे एक बार का आपूर्ति-आघात मान लिया जाए तो यह भ्रामक स्थिति होगी। विविध कीमत सूचकांकों में खाद्यान्न के उच्च हिस्से (46 प्रतिशत-70 प्रतिशत) को देखते हुए खाद्यान्न के मोर्चे पर सतत बना रहने वाला आपूर्ति-दबाव मुद्रास्फीति की प्रत्याशाओं को बढ़ा सकता है; और बढ़ते माँग-दबावों के होते हुए भी बढ़ती मुद्रास्फीति प्रत्याशाएँ मजदूरी कीमत को उत्तरोत्तर बढ़ा सकती हैं । हाल ही में प्राप्त ऐसी रिपोर्टों के अनुसार, कि ग्रामीण श्रमिकों की वास्तविक मजदूरी में इजाफा हुआ है, उल्लेखनीय रूप से यह पता चलता है कि मजदूरी और कीमत के बीच यह चक्र जारी है।

11. सारांश में कहा जाये तो जिस मुद्रास्फीति को हमने लगभग बीस महीनों से अनुभव किया है वह उन आपूर्ति आघातों का , जिनका अभिप्रेत प्रभाव कीमतों पर पड़ा, और माँग दबावों का संयुक्त परिणाम है। मुद्रास्फीति के प्रेरक तत्वों के स्वरूप और उनके सम्मिलित प्रभाव को देखते हुए मुद्रास्फीति से जूझने में मौद्रिक नीति की महत्वपूर्ण भूमिका स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। हमारा मौद्रिक नीति दृष्टिकोण इस समझदारी से निदेशित हो रहा है, और इसका लक्ष्य माँग को नियंत्रित रखना और मुद्रास्फीति की प्रत्याशाओं पर अंकुश लगाना है। हमारे आलोचकों का यह तर्क कि मौद्रिक नीति की इसमें कोई भूमिका नहीं है, क्योंकि मुद्रास्फीति आयातित पण्य-कीमतों के परिणामस्वरूप होती है, मान्य होता, यदि पण्य कीमतों में बढ़ोतरी केवल अल्पकालिक आपूर्ति आघात के चलते होती या माँग-जन्य दबावों का अस्तित्व ही नहीं होता। भारत में स्पष्टतः ऐसी स्थिति नहीं है।

मौद्रिक कठोरता से वृद्धि को क्षति पहुचती है

12. इस तरह की आलोचना में एक अन्य तर्क यह दिया जाता है कि मौद्रिक नीति की कठोरता वृद्धि को क्षति पहुँचा रही है । मेरा मानना है कि हमारे मौद्रिक नीति दृष्टिकोण का और अधिक सूक्ष्म मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है । अनुभवमूलक अनुसंधान से प्राप्त साक्ष्य यह बताता है कि वृद्धि और मुद्रास्फीति के बीच का संबंध एकसमान नहीं होता है। कम मुद्रास्फीति और स्थिर मुद्रास्फीति प्रत्याशाओं पर वृद्धि और मुद्रास्फीति का अलग-अलग प्रभाव पड़ता है। लेकिन मुद्रास्फीति के

निश्चित आरंभिक स्तर के ऊपर यह प्रभाव उलट जाता है, समझौताकारी तालमेल गायब हो जाता है और उच्च मुद्रास्फीति वास्तव में वृद्धि को नुकसान पहुँचाना आरंभ कर देती है । रिज़र्व बैंक के अनुमान से, जिसके लिए भिन्न-भिन्न तरीके अपनाए गए थे, मुद्रास्फीति के आरंभिक स्तर को 4 प्रतिशत से 6 प्रतिशत की सीमा में रखा गया था । डब्लूपीआइ मुद्रास्फीति 9 प्रतिशत से ऊपर रहने के कारण अब हम इस संबंध में आरंभिक स्तर को पीछे छोड़ चुके हैं । इस उच्च स्तर पर, मुद्रास्फीति असंदिग्ध रूप से वृद्धि के प्रतिकूल है; यह निवेशकों के विश्वास को तेजी से कम करती है और मध्यावधि वृद्धि की संभावनाओं को भी कम करती है । रिज़र्व बैंक की मौद्रिक नीति तदनुसार मध्यावधि वृद्धि बनाए रखने की ओर अग्रेसर होती है, भले ही इसका परिणाम यह हो कि निकट-भविष्य की वृद्धि पर भारी दुष्प्रभाव पड़े।

मौद्रिक नीति वक्र के पीछे रहती है

13. अब मैं एक दूसरी आलोचना की ओर मुड़ता हूँ - कि रिज़र्व बैंक ने मौद्रिक नुकसानों को रोकने में सुस्ती दिखाई, कि हमारे 'हल्के कदम' वाला दृष्टिकोण मुद्रास्फीति के दबावों को नियंत्रित करने के लिए अपर्याप्त था, और कि हमें विलंब से आक्रामक होकर कठोर नीति इसलिए अपनानी पड़ी ताकि नष्ट हुए समय की क्षतिपूर्ति हो सके ।

14. यह आलोचना उस संदर्भ का मूल्यांकन करने में विफल रही है कि "घरेलू मुद्रास्फीति का स्वरूप क्या था और वैश्विक अनिश्चितता कैसी थी" जिसमें हम उस समय काम कर रहे थे । हमारी मौद्रिक नीति की कठोरता का अत्यंत सावधानीपूर्वक निर्धारण राजकोषीय वर्ष 2010-11 के दौरान मुद्रास्फीति के बदलते प्रेरक तत्वों से निदेशित हुआ था । इस वर्ष के प्रारंभ में मुद्रास्फीति के दबाव का स्रोत खाद्यान्नों की कीमतें थीं, और तदनुसार मौद्रिक नीति संबंधी हमारे उपायों का लक्ष्य खाद्येतर मुद्रास्फीति पर इसके पड़ने वाले प्रभावों को रोकना था । यह ध्यान रखें कि संकट के दौरान नीति-दरें अत्यंत कम कर दी गई थीं, और इसमें अचानक कोई समायोजन किया जाना बाजार को अस्त-व्यस्त कर दे सकता था । अत: हमने यह निर्णय लिया कि मौद्रिक नीति को धीरे-धीरे कठोर बनाया जाये, थोड़ा-थोड़ा करके, ताकि बैंकों और निजी क्षेत्र को उच्चतर ब्याज दर वातावरण में स्वयं को ढालने का अवसर मिल सके।

15. मुद्रास्फीति के परिदृश्य में अगस्त 2010 से परिवर्तन होना आरंभ हुआ जब वैश्विक पण्य-कीमतें आशा से अधिक बढ़ने लगीं । जनवरी 2011 से वैश्विक तेल-कीमतें अधिक दबावग्रस्त होने लगीं जिसका कारण था मध्य-पूर्व और उत्तरी अफ्रीका की राजनीतिक गतिविधियाँ। यह भी कि, जैसाकि मैंने पूर्व में इंगित किया था, उत्पादन अंतराल के संकुचित होते जाने के कारण उत्पादक उच्चतर निविष्टि-कीमतों का अंतरण उच्चतर उत्पादन कीमतों में करने लगे थे जिसके चलते मुद्रास्फीतिकारक दबाव का सामान्यीकरण हुआ, जिसका साक्षी है खाद्येतर विनिर्मित उत्पाद मुद्रास्फीति में बढ़ोतरी का होना, जो अगस्त 2010 में 5.3 प्रतिशत था और जो मार्च 2011 में बढ़कर 8.5 प्रतिशत हो गया। हमने मुद्रास्फीति के अंतर्निहित प्रेरक तत्वों में इन परिवर्तनों की प्रतिक्रिया में मई 2011 से मौद्रिक नीति को अधिक आक्रामक रूप से कठोर बनाया ।

16. दूसरा कारक, जो 'वक्र के पीछे' बहस से संगति रखता है, यह है कि हमें भी एक अनिश्चित वैश्विक रिकवरी से संघर्ष करना पड़ा था । अप्रैल 2010 में रिकवरी की गति तेज होने की बात किये जाने पर भी यह आशावाद अधिक दिनों तक टिका नहीं रहा; इसके शीघ्र बाद ग्रीक सरकारी ऋण संकट और अमेरिका में बेरोजगारी की चिंताओं ने वैश्विक रिकवरी की गति और स्वरूप के बारे में चिंता को फिर से जगा दिया । जैसे-जैसे समय बीता, इन अनिश्चितताओं के स्वरूप और आकार, दोनों में बढ़ोतरी होती गयी, जिसमें यूरो क्षेत्र की सरकारी ऋण समस्या न केवल बढ़ती गयी, बल्कि यह दुर्दमनीय भी साबित हुई, अमेरिकी रिकवरी रुक गयी और जापानी अर्थव्यवस्था पर अभूतपूर्व प्राकृतिक आपदा ने प्रहार किया । हमारा 'नन्हा कदम' दृष्टिकोण वर्ष 2010 के दौरान तदनुसार देश में रिकवरी में मदद करने के लिए वैश्विक अनिश्चितता और मुद्रास्फीति दबाव को थामे रखने के बीच एक नाजुक संतुलनकारी कार्य था ।

17. यदि उपर्युक्त कारकों को गिना जाये तो 'वक्र के पीछे' तर्क की शक्ति समाप्त हो जाती है । मार्च 2010 के आरंभ से हमने अब तक नीतिगत ब्याज दरों (रेपो दर) को 350 आधार अंक बढ़ाया है । कारगर कठोरता तो और भी अधिक, 500 आधार अकों तक हुई, क्योंकि परिचालनात्मक नीति दर रिवर्स रेपो दर (अवशोषण का तरीका) से बदल कर रेपो दर (अंत:क्षेप का तरीका) की ओर मुड़ गई ।

18. हमारे मौद्रिक नीति दृष्टिकोण की दोनों तरफ से की गयी आलोचना का उत्तर देने में मेरा प्रयास आपको यह बताने का रहा है कि मौद्रिक नीति संबंधी प्रत्येक कार्य में जटिल निर्णय शामिल होता है । वास्तविक जगत में जिस आपूर्ति-आघात का हम सामना करते हैं, वह पाठ्य पुस्तक में इस बारे में दी गयी जानकारी से बिलकुल अलग होता है; अक्सर वह बढ़ते माँग दबाव के अनुरूप होता है । हमें वृद्धि-मुद्रास्फीति की चिंताओं के बीच संतुलन लाना होता है । इसके अतिरिक्त, मौद्रिक नीति कार्य को आशावादी होने की आवश्यकता होती है, भले ही बाह्य अनिश्चितता कैसी भी हो । सार रूप में कहा जाये तो मौद्रिक नीति संबंधी निर्णयों की यही दुविधा है ।

आप नीतिगत कठोरता के चक्र के बीच नकदी के अंत:क्षेप को कैसे उचित ठहराएंगे?

19. मौद्रिक नीति के परंपरागत साधन होते हैं मुद्रा के परिमाण (चलनिधि) और मुद्रा की कीमत (नीतिगत ब्याज दर) पर नियंत्रण रखना । विशिष्ट रूप से एक विस्तारक दृष्टिकोण में दर और परिमाण, दोनों को सरल बनाना शामिल होगा और विलोमत: एक संकुचनकारी

दृष्टिकोण में दोनों को कठोर बनाया जाना शामिल होगा। कभी-कभी ऐसी स्थिति हो जाती है जब कीमत और परिमाण से संबंधित लिखतों को विपरीत दिशाओं में नियोजित करना पड़ता है - उदाहरण के लिए, किसी दर कठोरता के मध्य चलनिधि का अंतःक्षेप करना - जो सतर्क निर्णय और संप्रेषण के लिए अतिरिक्त प्रयास करने की अपेक्षा रखता है।

20. किसी केंद्रीय बैंक द्वारा चलनिधि समायोजन के लिए प्रेरक बल को समझने के वास्ते यह अवश्य नोट किया जाना चाहिए कि एक आगे बढ़ती अर्थव्यवस्था केंद्रीय बैंक से यह अपेक्षा रखती है कि वह मुद्रा और ऋण की अपेक्षा को पूरा करने के लिए प्राथमिक चलनिधि का अंतःक्षेप करे । यह अंत-क्षेप केवल आरक्षित (आधार) मुद्रा के विस्तार के माध्यम से किया जा सकता है । पहले दृष्टांत में चलनिधि का अंतःक्षेप बैंकों द्वारा चलनिधि समायोजन सुविधा के अंतर्गत एकदिवसीय उधार के माध्यम से किया जाता है । यदि चलनिधि की कमी स्थायी प्रकार की हो तो केंद्रीय बैंक को तत्काल खुला बाजार परिचालन के माध्यम से सरकारी प्रतिभूतियाँ खरीद कर इस जरूरत को पूरा करना होता है ।

21. जैसे-जैसे हम वर्ष 2010 में मौद्रिक कठोरता की नीति की ओर बढ़ते गये, एलएएफ विंडो अधिशेष (अवशोषण) मोड से कमी (अंतःक्षेप) मोड की ओर मुड़ गई। यह हमारे मुद्रास्फीति-विरोधी दृष्टिकोण से संगति रखता था क्योंकि चलनिधि की कमी की स्थिति से मौद्रिक संचरण में सुधार होता । हमने स्पष्ट रूप से यह भी इंगित किया था कि रिज़र्व बैंक का यह प्रयास होगा कि यह अवशोषण या अंत-क्षेप को एलएएफ विंडो के माध्यम से बैंको की निवल माँग और मीयादी देयताओं (एनडीटीएल) के लगभग ± 1 प्रतिशत पर बनाये रखेगा। तथापि, वर्ष 2010 की दूसरी छमाही में प्रणालीगत चलनिधि और महँगी हो गयी जिसने एलएएफ विंडो के माध्यम से अंत-क्षेप को एनडीटीएल के 1 प्रतिशत से ऊपर कर दिया । ऐसा संरचनात्मक और एक ही बार उत्पन्न होने वाले कारकों के संयोग के चलते हुआ । इस तथ्य को पहचानते हुए कि प्रणालीगत चलनिधि में कमी स्थायी स्वरूप की है, रिज़र्व बैंक ने तत्काल ओएमओ का संचालन किया ताकि स्थायी स्वरूप की चलनिधि का अंतःक्षेप किया जा सके।

22. ओएमओ के माध्यम से चलनिधि का अंतःक्षेप ऐसे समय में हुआ जब हम मुद्रास्फीति रोकने के लिए नीति दरों को कठोर बना रहे थे। ये स्पष्टतः प्रतिकूल दिखने वाले कार्य थे, और अनेक प्रेक्षकों ने उन्हें परस्परविरोधी और असंबद्ध उपाय के रूप में देखा होगा । हमने महसूस किया कि कहीं-न-कहीं संप्रेषण की चुनौती है - बाजार को यह स्पष्ट करने के लिए, कि चलनिधि का अंतःक्षेप किये जाने का हमारा कार्य हमारे मुद्रास्फीति विरोधी दृष्टिकोण से असंगत नहीं था, कि हम इस बात पर अडिग रहे कि चलनिधि को मौद्रिक कठोरता के चक्र में कमी के मोड में होना चाहिए, लेकिन हम चलनिधि का अंतःक्षेप यह सुनिश्चित करने के लिए कर रहे थे कि उत्पादक-प्रयोजनों के लिए ऋण-प्रवाह बंद न हो पाये ।

23. निस्संदेह, जानकार बाजार प्रतिभागी हमारे कार्य के औचित्य को समझते थे । लेकिन हमने उस औचित्य के बारे में जनता को सूचित करने के महत्त्व को पहचाना । यदि लोगों को भ्रामक नीति-संकेत मिलते, जिससे वे समझते कि मुद्रास्फीति को नियंत्रण में रखने की केंद्रीय बैंक की प्रतिबद्धता भरोसे लायक नहीं है, तो मुद्रास्फीति प्रत्याशाएँ डाँवाडोल हो जातीं और वह हमारी मुद्रास्फीति-रोधी रणनीति की प्रभावकारिता को नुकसान पहुँचाती। अतएव हमने गैर-तकनीकी स्तर पर अपने कदम के औचित्य को संप्रेषित करने के लिए अतिरिक्त कदम बढ़ाये ।

भावी मार्गदर्शन : कोई केंद्रीय बैंक कितना पारदर्शी हो सकता है / उसे कितना पारदर्शी होना चाहिए ?

24. आज की सर्वमान्य समझदारी यह है कि सफल मौद्रिक नीति केवल एकदिवसीय ब्याज दरों के कारगर और बारीकी से निर्धारण का विषय नहीं है, बल्कि यह बाजार की प्रत्याशाओं को ऐसा आकार देने के लिए भी है जिसमें ब्याज दरों, मुद्रास्फीति और आमदनी को आशावादिता के साथ निर्धारित किये जाने की संभावना होती है । इस प्रयोजन के लिए केंद्रीय बैंकों द्वारा प्रयुक्त महत्त्वपूर्ण साधन 'प्रगतिशील मार्गदर्शन' होता है जिसे वे अपने मौद्रिक नीति वक्तव्यों में प्रकाशित करते हैं ।

25. प्रगतिशील मार्गदर्शन करने की प्रथा सभी केंद्रीय बैंकों में अलग-अलग है । इस विषय में सबसे अधिक सुव्यक्त प्रथा बैंक ऑफ कनाडा द्वारा अपनायी गयी है जिसने संकट के दौरान परिलक्षित अनिश्चितता को देखते हुए एक निश्चित समय-सीमा बाँध दी, जिसमें यह एकदिवसीय ब्याज दर को 'वर्तमान' स्तर पर रखता था और ऐसा करते समय निस्संदेह मुद्रास्फीति संबंधी दृष्टिकोण को भी ध्यान में रखा जाता था। यूरोपियन केन्द्रीय बैंक इस आधार पर परंपरागत रूप से कम सुव्यक्त रहा है कि नीतिगत प्रतिबद्धता एक अनिश्चित समष्टि वातावरण में संभव नहीं है । प्रत्याशाओं को आकार देने और उनका प्रबंधन करने में प्रगतिशील मार्गदर्शन का उपयोग करने का यूएस फेड का एक विश्वसनीय रिकार्ड रहा है। संकट के समय से लगभग दो वर्षों तक फेड ने बाजार का मार्गदर्शन यह कहते हुए किया कि 'आर्थिक स्थितियाँ ऐसी हैं जिसमें एक विस्तारित अवधि तक फेडरल फंड दर के आपवादिक रूप से न्यून स्तर पर रहने की संभावना है' । फेड ने 9 अगस्त 2011 के अपने हाल के वक्तव्य मे 'विस्तारित अवधि' को स्पष्ट करते हुए उसका विस्तार 'कम से कम वर्ष 2013 के मध्य तक' बताया, जिससे बाजार प्रतिभागियों को योजना बनाने के लिए एक अधिक निश्चित समय-सीमा मिली। फेड को स्पष्ट रूप से यह उम्मीद है कि अनिश्चितता कम करने से, प्रगतिशील मार्गदर्शन कम-से-कम एक आयाम (समय आयाम) में माँग को प्रोत्साहित करेगा ।

26. प्रगतिशील मार्गदर्शन देना अनिवार्यत: हमेशा सकारात्मक कदम ही नहीं होता । केंद्रीय बैंकों को अनेक दुविधाओं का सामना करना पड़ता है । पहला यह कि मार्गदर्शन संबंधी परिस्थितियों को व्यक्त करने के लिए कैसी शब्दावली का प्रयोग किया जाए। यह इतना अस्पष्ट नहीं होना चाहिए कि उसकी विषयवस्तु का महत्त्व ही समाप्त हो जाए; दूसरी ओर, इसे इतना संक्षिप्त भी नहीं होना चाहिए कि केंद्रीय बैंक शब्दों के बंधन में बँधा रह जाए और परिस्थितियों में परिवर्तन होने पर वह पूर्वलिखित मार्गदर्शन से थोड़ा भी इधर-उधर हटकर कोई कदम न उठा सके। एक दूसरी और इससे संबद्ध दुविधा यह है कि यह कैसे सुनिश्चित किया जाए कि बाजार परिस्थितियों को सही तरीके से समझे और लिखित मार्गदर्शन को केंद्रीय बैंक का अकाट्य आश्वासन न मान ले ।

27. वर्ष 2010 के प्रारंभ से, सर्वोत्तम व्यवहार के अनुकूल रिज़र्व बैंक भी प्रगतिशील मार्गदर्शन देने लगा है । और, जैसीकि उम्मीद थी, हमने भी चिरसम्मत संप्रेषण संबंधी दुविधा का सामना किया है। इसे मैं स्पष्ट करता हूँ । जुलाई 2011 की पहली तिमाही समीक्षा में हमने कहा था :

'आगे बढ़ते हुए, मौद्रिक नीति का रुझान विकसित होती मुद्रास्फीति की अधिकतम और न्यूनतम सीमा पर निर्भर करेगा, जो बदले में, घरेलू वृद्धि और वैश्विक पण्य-कीमतों की प्रवृत्तियों द्वारा निर्धारित होगी। रुझान में परिवर्तन मुद्रास्फीति में धारणीय गिरावट के संकेतों से प्रेरित होगा ।'

28. इसके साथ-साथ हमने यह भी नोट किया कि मौद्रिक नीति का रुझान 'वृद्धि के सामान्य प्रवृत्ति से बहुत नीचे गिरने के जोखिम का प्रबंधन करना' होगा।

29. इन दोनों वक्तव्यों को एक साथ पढ़ने के बाद कुछ विश्लेषकों ने मार्गदर्शन की आलोचना इसलिए की है कि यह संक्षिप्त नहीं है; विशेषत:, इस प्रकार के प्रश्न पूछे गये, जैसेकि 'प्रवृत्ति वृद्धि दर क्या है' और 'आरबीआई प्रवृत्ति वृद्धि दर से कितना विचलन बरदाश्त कर सकता है' । यह एक आलोचना उचित थी और ये प्रश्न प्रासंगिक थे । संकट-पश्चात् की अवधि में हमारी प्रवृत्ति वृद्धि दर 8 प्रतिशत पर अनुमानित थी, लेकिन यदि वृद्धि में निरंतर गिरावट होती रहे और वह उस दर से काफी नीचे चली जाये तो नीतिगत रुझान का संतुलन बदलेगा। लेकिन रुझान में बदलाव मुद्रास्फीति के बाह्य और आंतरिक प्रेरक तत्वों के व्यवहार पर भी अवलंबित होगा । इस आलोचना के प्रत्युत्तर में हमने जो कहा वह यह था कि 'प्रवृत्ति वृद्धि दर के काफी नीचे' की समय से पहले ठीक-ठीक परिभाषा दे पाना कठिन होता है, और कि मार्गदर्शन में अस्पष्टता जानबूझ कर रखी गयी थी क्योंकि ऐसा किया जाना अपरिहार्य था ।

30. प्रगतिशील मार्गदर्शन के इस संपूर्ण मुद्दे का केंद्रबिंदु यह है कि केंद्रीय बैंक के हाथ बाह्य अनिश्चितता से बंधे होते हैं क्योंकि उसपर उसका नियंत्रण नहीं होता है । संकट ने इस दुविधा को तीव्र फोकस में ला दिया है। एक ओर केंद्रीय बैंक प्रत्याशाओं का, यहाँ तक कि परिणामों का भी प्रबंधन करने के लिए प्रगतिशील मार्गदर्शन के माध्यम का उपयोग करना चाहते हैं; दूसरी ओर वे बाह्य अनिश्चितता के चलते काफी संक्षिप्तता का आश्रय नहीं ले सकते हैं । मौद्रिक नीति को किस प्रकार संसूचित किया जाये कि लाभ-लागत संतुलन सकारात्मक रहे, यह एक अन्य दुविधा केंद्रीय बैंकों के सामने होती है ।

क्या मौद्रिक नीति को आस्ति-कीमतों के समाधान हेतु भी कदम उठाने चाहिए?

31. संकट से उठे सवालों में से एक सवाल यह उठाया जाता है आस्ति-कीमतों में अस्थायी उतार-चढ़ाव होने पर कार्रवाई करने के मामले में केंद्रीय बैंक की भूमिका क्या हो। संकट के पूर्व व्यापक रूप से स्वीकार किया गया सैद्धांतिक विचार - हालाँकि यह एकमात्र विचार नहीं था - ग्रीनस्पैन रूढ़िवादिता का था, जिसे सारांशत: निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया जा सकता है । पहला, आस्ति-कीमतों में अस्थायी उतार-चढ़ाव को तत्काल आधार पर पहचान लेना कठिन होता है और जो मौलिक कारक आस्ति-कीमतों को प्रभावित करते हैं, वे प्रत्यक्ष तौर पर दिखाई नहीं देते । अत: केंद्रीय बैंक को बाजार का अनुमान नहीं करना चाहिए - उसे कोई मौका दुबारा नहीं मिलता है । दूसरा, मौद्रिक नीति आस्ति-कीमतों में आने वाले उछाल से निपटने का असरदार साधन नहीं है। और तीसरा यह कि केंद्रीय बैंक आस्तियों की कीमतों के सामान्य हो जाने के बाद "अव्यवस्था को केवल दूर भर कर सकते हैं"। इसलिए अंदाजा यह था कि 'परिस्थितियों के विपरीत' रुझान वाली अधिक सक्रिय मौद्रिक नीति संबंधी लागत-लाभ कलन स्पष्टत: नकारात्मक होगा । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि पार्टी के अनियंत्रित हो जाने के भय से पंच बाउल हटा लेने का काम केंद्रीय बैंक का नहीं है ।

32. संकट ने ग्रीनस्पैन रूढ़िवादिता की विश्वसनीयता पर सवाल खड़े कर दिए हैं । संकट-पश्चात् की अवधि में उभरता विचार यह है कि केंद्रीय बैंक आस्ति-कीमतों में उतार-चढ़ाव से उदासीन नहीं रह सकते। तथापि, इसने एक नई बहस को जन्म दिया है कि केंद्रीय बैंक की क्या भूमिका होनी चाहिए और वह भूमिका इसकी अन्य जिम्मेवारियों को और वस्तुत: इसकी स्वायत्तता को किस प्रकार प्रभावित करेगी । यह बहस अभी भी चल रही है और इसका कोई निर्णायक उत्तर नहीं मिल पाया है । फिर भी, इसने कुछ विचारों को मूर्त रूप देने में मदद की है, जिससे भावी पथ के बारे में निर्णय लिया जा सके।

33. आस्ति-कीमतों के प्रबंधन के लिए मौद्रिक नीति संबंधी उपायों का प्रयोग न किये जाने का संकट-पूर्व अवधि का रूढ़िवादी विचार अब

अपनी सामर्थ्य खो चुकी है लेकिन इसके सामर्थ्य के बारे में अभी भी शंकाएँ बनी हुई हैं । इस बहस का सार यह है कि नीतिगत ब्याज दरों को थोड़ा-थोड़ा करके 25-50 आधार अंक बढ़ाये जाने की मौद्रिक नीति कार्रवाई आस्ति-कीमतों में बढ़ोतरी को रोक पाने में मददगार साबित नहीं होगी । दूसरी ओर, आस्ति-कीमतों का बढ़ना रोकने के लिए की गयी मौद्रिक नीति संबंधी आक्रामक कार्रवाई से वास्तविक अर्थव्यवस्था को भारी नुकसान पहुँचेगा । एक सर्वसम्मति यह बन रही है कि आस्ति-कीमतों से जुड़ी समस्या के समाधान के लिए सर्वाधिक उचित तरीका समष्टिविवेकपूर्ण साधनों का प्रयोग है, जो या तो अकेले प्रयोग में लाए जा सकते हैं या मौद्रिक नीति के अन्य उपायों के साथ संयुक्त रूप से। वस्तुतः समष्टिविवेकपूर्ण साधन बासेल 3 पैकेज के केंद्रबिंदु में हैं जिसपर पिछले वर्ष सहमति बनी थी।

34. समष्टिविवेकपूर्ण नीतियाँ अवधारणा की दृष्ट से साफ-सुथरी हैं, लेकिन उनके क्रियान्वयन के समय अनेक समस्याएँ सामने आती हैं । समष्टिविवेकपूर्ण नीति के साधन, यथा, पूँजी संबंधी मानदंड, प्रतिचक्रीय बफर्स और जोखिम भार विनियमन के क्षेत्र में आते हैं। लेकिन मौद्रिक रुझान और समष्टिविवेकपूर्ण नीति के बीच सामंजस्य भी रखा जाना चाहिए । क्या तब इसका अर्थ यह है कि केंद्रीय बैंक का उत्तरदायित्व बैंक विनियमन भी होना चाहिए। दूसरी ओर, यदि उत्तरदायित्वों का बंटवारा भिन्न-भिन्न एजेंसियों के बीच कर दिया जाता है, तो समन्वय के लिए प्लैटफार्म और प्रोटोकॉल क्या होगा? सरकार की क्या भूमिका होनी चाहिए ?

35. वस्तुतः, संकट-पश्चात् अवधि में समष्टिविवेकपूर्ण पर्यवेक्षण का कार्य केन्द्रीय बैंकों को सौंपे जाने की प्रवृत्ति रही है, और जहाँ केंद्रीय बैंकों को पहले से ही यह उत्तरदायित्व सौंपा जा चुका है, वहाँ इसे सुव्यक्त रूप से परिभाषित किया जाना है । जबकि उसमें कुछ सहक्रिया हो सकती है, लेकिन हितों के टकराव की संभावना के बारे में सवाल भी खड़े किये जा सकते हैं, उदाहरण के लिए, जब किसी समष्टिआर्थिक स्थिति में कठोर मौद्रिक नीति जरूरी हो लेकिन केंद्रीय बैंक इस पर आपत्ति कर सकता है क्योंकि कठोर नीति अपनाये जाने से बैंकिंग प्रणाली की स्थिरता के बारे में चिंता बढ़ सकती है । लेकिन कुछ लोग तर्क देते हैं कि मौद्रिक नीति और समष्टिविवेकपूर्ण नीति के बीच संभावित विरोध के बारे में बढ़ा-चढ़ा कर कहा जा रहा है । समष्टिविवेकपूर्ण पर्यवेक्षण, और अधिक व्यापक रूप में वित्तीय स्थिरता का उत्तरदायित्व, केंद्रीय बैंकों को सौंपने में यह चिंता जतायी जाती है कि यह उत्तरदायित्व किस प्रकार केंद्रीय बैंकों के लिए महत्त्वपूर्ण स्वायत्तता को प्रभावित करेगा । यह आशंका इसलिए होती है क्योंकि समष्टिविवेकपूर्ण निर्णयों के लिए मौद्रिक नीति संबंधी निर्णयों की तुलना में व्यक्तिपरक निर्णय का बड़ा तत्त्व आवश्यक होता है, और यदि ऐसी स्थिति हो तो इसमें बाहरी हस्तक्षेप की गुंजाइश हो सकती है ।

36. उपर्युक्त की तरह अनेक प्रयास केवल इसीलिए किये गये हैं ताकि आस्ति-कीमत प्रबंधन के लिए केंद्रीय बैंक के उत्तरदायित्व के मुद्दे से उठने वाले अनेक प्रश्नों का आभास आपको दिया जा सके, वस्तुतः अधिक व्यापक रूप से वित्तीय स्थिरता के संबंध में । इस भाषण का विषय-क्षेत्र इस बहस के विस्तृत मूल्यांकन की अनुमति नहीं देता है । लेकिन मैं इस दिशा में रिज़र्व बैंक का परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करना चाहता हूँ ।

37. रिज़र्व बैंक को परंपरागत रूप से कुछ विकास कार्यों के उत्तरदायित्व सहित अधिक उत्तरदायित्व का निर्वहन करने के लिए अधिदेश प्राप्त है जो अन्य अर्थव्यवस्थाओं में केंद्रीय बैंकों के लिए केवल प्रतीकात्मक होता है । मौद्रिक नीति और समष्टिविवेकपूर्ण नीति का साथ-साथ प्रबंधन करने के संबंध में हमारा अनुभव सकारात्मक, वस्तुतः सहक्रियात्मक रहा है । आस्ति-कीमत प्रवृत्तियाँ उन अनेक वैरिएबल्स में से हैं, जिनपर हम मौद्रिक नीति के सम्यक् निर्धारण में ध्यान देते हैं । यदि मांग-जन्य दबाव सभी स्तरों पर होता है तो हमने मौद्रिक नीति के परंपरागत साधनों, यथा, नीतिगत ब्याज दरों का उपयोग किया है। दूसरी ओर, यदि माँग-जन्य दबाव विनिर्दिष्ट क्षेत्रों तक सीमित होते हैं तो हमने समष्टिविवेकपूर्ण साधनों, यथा, जोखिम भार और प्रावधानन मानदंडों का प्रयोग करने को अधिक सफल पाया है ताकि ऋण के इन क्षेत्रों की ओर जाने की गति को धीमा किया जा सके । हमने समष्टिविवेकपूर्ण साधनों का उपयोग संतुलित रूप से किया है - उदाहरण के लिए, संकट की प्रतिक्रिया के भाग के रूप में, संकट से पूर्व के वर्षों में, अत्यधिक माँग की अवधि में नीति को कठोर बनाना, और माँग में कमी की अवधि में नीति को सरल बनाना।

38. संकट-पश्चात् अवधि में समष्टिविवेकपूर्ण नीतियों के बारे में बहुत अधिक चर्चा शुरू होने के बावजूद, उनका प्रयोग करने के मामले में बहुत अधिक सावधानी से निर्णय लेने की जरू रत पड़ती है। कोई भी निर्णय लेने के लिए केंद्रीय बैंक को यह पता करना होता है कि क्या आस्ति-कीमत में वृद्धि 'अत्यधिक लिवरेज' से प्रेरित है और क्या कीमत-वृद्धि सभी स्तरों पर हो रही है या विनिर्दिष्ट क्षेत्रों तक सीमित है। समष्टिविवेकपूर्ण नीतियों का प्रयोग करने में बहुत हद तक स्मरण रखने योग्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जब हमें पिछली घटनाओं से सबक लेने का लाभ हासिल है तब सभी परंपरागत नीतियाँ सुरक्षित दिखती हैं । लेकिन बड़े संकट से निबटने के लिए अत्यधिक परंपरागत दृष्टिकोण रखने से वित्तीय नवोन्मेष और प्रगति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है । अस्थिरता को रोकने और नवोन्मेष का संवर्धन करने के बीच संतुलन किस प्रकार स्थापित किया जाये, यह केंद्रीय बैंकों को सीखना होगा । और यह भारत जैसी उभरती बाजार अर्थव्यवस्था में विशेष महत्त्व रखता है जहाँ बाजार के विकास के लिए केंद्रीय बैंक का दायित्व, हालाँकि वह सुव्यक्त नहीं होता, काफी महत्त्वपूर्ण होता है ।

मौद्रिक नीति को किस प्रकार राजकोषीय नीति के साथ इंटरफेस का प्रबंधन करना चाहिए?

39. महामंदी के बाद लगभग सत्तर वर्षों तक राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों के बीच अपने-अपने प्रभाव के लिए स्पर्धा देखी गयी है। इस अवधि में अधिकांशतः विकसित देशों में लगभग सर्वत्र, कीनिशियन मत का परिचालन होता रहा और राजकोषीय नीति हावी बनी रही और मौद्रिक नीति उसके वशवर्ती बनी रही । 1970 के दशक की मुद्रास्फीतिजन्य मंदी, फ्रायडमैन और अन्य के प्रभावशाली मुद्रावादी विचार और आपूर्ति-पक्ष संबंधी नीतियों की मुद्रास्फीति को वश में रखने की प्रत्यक्ष सफलता ने संपूर्ण कीनिशियनवाद से अलग, सोच में बदलाव को प्रेरित किया । मौद्रिक नीति निर्धारित करने में विवेक बनाम नियमों का सैद्धांतिक विश्लेषण किया जाना भी महत्त्वपूर्ण था । सैद्धांतिक प्रगति और अनुभवमूलक साक्ष्य ने एक साथ मिल कर मौद्रिक नीति को राजकोषीय नीति के प्रभुत्व से मुक्त कराया और केंद्रीय बैंकों ने अपनी स्वायत्तता को अक्षुण्ण बनाये रखने का कार्य आरंभ किया ।

40. राजनीति-प्रेरित राजकोषीय नीति के कारगर प्रतिसंतुलन के रूप में मौद्रिक प्राधिकारी के राजनीतिनिरपेक्ष होने के फायदों के स्पष्टतः दिखाई देने पर भी जनतांत्रिक विवशताओं ने राजकोषीय अनुशासन को अधिकाधिक कठिन बना दिया । इससे बचने के लिए 1990 के दशक के आरंभ से अनेक देशों ने स्वेच्छा से राजकोषीय जवाबदेही कानून बनाये । इन कानूनों ने एक ओर राजकोषीय घाटे / लोक ऋण पर सीमा लगायी और दूसरी ओर केंद्रीय बैंक द्वारा राजकोषीय घाटे का प्राथमिक वित्तपोषण किये जाने को प्रतिषिद्ध किया । इस संस्थागत ढाँचे ने केंद्रीय बैंक को नियम-आधारित प्रणाली के भीतर मौद्रिक नीति का संचालन करने में परिचालनात्मक स्वतंत्रता प्रदान की और इससे मुद्रास्फीति को नीचे रखने में भी सफलता मिली ।

41. संकट के दौरान नियम-आधारित राजकोषीय व्यवस्था उभर कर सामने आई क्योंकि सरकारें और केंद्रीय बैंक, दोनों ने एक दूसरे से समन्वय रखते हुए विस्तारक नीतियों को कार्यान्वित किया । संकट के दौरान घोर शुद्धिवादियों को छोड़कर किसी अन्य ने ऐसे समन्वय पर सवाल नहीं उठाए लेकिन अब रिकवरी की अवधि में अनेक मौलिक चिंताएँ उभर रही हैं । इन चिंताओं का मर्म यह है कि क्या मौद्रिक नीति एक बार फिर राजकोषीय विवशताओं के चंगुल में फँसने जा रही है ? बहस के ब्यौरों में अंतर है, लेकिन बुनियादी मुद्दे एक ही हैं । अमेरिका में अल्पावधि राजकोषीय प्रोत्साहन और दीर्घावधि राजकोषीय समेकन के बीच समझौताकारी तालमेल को लेकर बहस हो रही । यूरो क्षेत्र में राजकोषीय संघ की साझा जिम्मेवारियों के बिना मौद्रिक संघ के साझा लाभ के बारे में प्रश्न किये जा रहे हैं । सब ओर जो प्रश्न उठ रहे हैं वे निम्नलिखित हैं : क्या केंद्रीय बैंकों को राजकोषीय शिथिलता की क्षतिपूर्ति करने के लिए विस्तारक मौद्रिक रुझान बनाये रखने हेतु उनके सहज क्षेत्र से बाहर धकेला जा रहा है ? क्या तथाकथिक स्वच्छ मौद्रिक कार्य ने राजकोषीय उपायों को झीना आवरण नहीं पहनाया है ? क्या केंद्रीय बैंक इस प्रक्रिया में मूल्य-स्थिरता की अपनी बुनियादी प्रतिबद्धता से समझौता नहीं कर रहे हैं ? क्या केंद्रीय बैंक राजनीतिक दबावों के चलते असुरक्षित नहीं हो रहे हैं ? क्या उनकी स्वायत्तता जोखिम में है ? इन प्रश्नों का उत्तर तब मिलेगा जब वर्तमान बड़े मुद्दों का समाधान किया जायेगा ।

42. अनेक अर्थव्यवस्थाओं की तरह भारत में भी 1970 और 1980 के दशक के दौरान मौद्रिक नीति पर राजकोषीय विचार हावी थे । बड़े और बढ़ते घाटों को समाप्त करने के लिए वित्तपोषण रिज़र्व बैंक द्वारा किया जाता था । इसके चलते आधार मुद्रा और मुद्रा आपूर्ति में वांछित वृद्धि से अधिक बढ़ोतरी होती थी, जो अंततः उच्च मुद्रास्फीति में प्रतिबिंबित होता था । अन्य अर्थव्यवस्थाओं की तरह हमने भी राजकोषीय जवाबदेही कानून बनाया - राजकोषीय जवाबदेही तथा बजट-प्रबंध (एफआरबीएम) अधिनियम, 2003 - जिसमें घाटा और ऋण-अनुपात की अधिकतम सीमा तय करने और केंद्रीय बैंक द्वारा सरकारी ऋण के प्राथमिक वित्तपोषण को प्रतिषिद्ध करने के प्रावधान किये गये । इन प्रावधानों ने वर्ष 2003-08 के दौरान राजकोषीय समेकन को सुविधाजनक बनाया और रिज़र्व बैंक को मौद्रिक नीति को, जिसका लक्ष्य था मुद्रास्फीति को न्यून और स्थिर बनाये रखना, कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक लचीलापन प्रदान किया ।

43. विश्व में अन्य देशों की तरह भारत में भी संकट के प्रत्युत्तर में मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों को आसान किया गया। खासकर इसका अर्थ था एफआरबीएम अधिनियम द्वारा लागू की गयी समेकन की प्रक्रिया को बाधित करना । भारत जैसे ही संकट से बाहर आया, सरकार ने तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिश के अनुसार राजकोषीय समेकन के लिए एक संशोधित योजना अपनाई । फिर भी, इस योजना के लक्ष्यों को पूरा कर पाना कठिन चुनौती होने वाली है । गैर-विवेकाधीन व्यय (वेतन, पेंशन, ब्याज भुगतान) की मात्रा बहुत अधिक है और इसे अल्पावधि में किसी भी प्रकार से समायोजित नहीं किया जा सकता है । विवेकाधीन व्यय सबसे अधिक आर्थिक सहायता पर किया जाता है - खाद्यान्न, उर्वरक और पेट्रोलियम उत्पादों पर । इनके लिए आर्थिक सहायता को कम करने की राह में जनतांत्रिक विवशताओं और आर्थिक शुचिता के बीच अनिवार्य रूप से खींचतान जारी रहती है । सरकार तो परिमाणात्मक लक्ष्य हासिल करने का प्रयास करती है लेकिन इसके साथ ही उसे राजकोषीय समायोजन की गुणवत्ता पर भी ध्यान देना होता है - अर्थात्, अनुत्पादक व्यय में कटौती करना और उत्पादक व्यय को बढ़ाना, जो अर्थव्यवस्था के संभाव्य आउटपुट को बढ़ाने के लिए आवश्यक होता है ।

44. जैसाकि मैंने कहा, रिज़र्व बैंक पिछले बीस महीनों से मुद्रास्फीति की समस्या से जूझ रहा है । जैसाकि सब जानते हैं, मौद्रिक कठोरता

माँग को नियंत्रित रखकर कार्य करती है । राजकोषीय रुझान माँग का पोषक होता है लेकिन मौद्रिक रुझान को अधिक आक्रामक होना पडता है। मौद्रिक नीति वृद्धि का अधिक पोषक बने, इसके लिए आवश्यक होगा कि राजकोषीय समेकन और अधिक दृढ़ता से लागू किया जाए ।

45. इस प्रकार, भारत में मौद्रिक नीति संबंधी दुविधा उन्नत अर्थव्यवस्थाओं से कुछ भिन्न प्रकार की है । उन्नत अर्थव्यवस्थाओं वाले केंद्रीय बैंकों के लिए दुविधा यह है कि क्या मौद्रिक नीति को राजकोषीय संकुचन का समायोजन करने के लिए आवश्यकता से अधिक अनुकूल बनाकर रखा जाये । इसके विपरीत, रिज़र्व बैंक की दुविधा यह है कि क्या राजकोषीय माँग के चलते मौद्रिक नीति को बहुत अधिक कठोर बनाया जा सकता है ।

उपसंहार

46. अपनी टिप्पणियों में मैंने आज आपके समक्ष ऐसी कुछ दुविधाओं को प्रस्तुत करने की चेष्टा की है जिनका सामना हम मौद्रिक नीति के प्रबंधन में करते हैं । सभी केंद्रीय बैंकों को इनका सामना करना पड़ता है, भले ही उनका विस्तार और समय भिन्न हो । मैंने आपको इनके संबंध में रिज़र्व बैंक का परिप्रेक्ष्य बताने की चेष्टा की है । जो संदेश मैंने देना चाहा है, वह यह है कि वास्तविक जीवन के नीतिगत मुद्दों का कोई बना-बनाया उत्तर नहीं होता । विश्लेषण महत्त्वपूर्ण होता है, लेकिन निर्णय अनिवार्य होता है । मेरा मानना है कि केंद्रीय बैंकरों और केंद्रीय बैंक के विद्वानों के बीच दुतरफा संवाद हमारे विश्लेषण और निर्णय को धारदार बनाने में मदद करेगा ।